किसका विकास, कैसा विकास : पूँजीपतियों के मुनीम की लफ़्फ़ाज़ी

● अरविन्द

अभी हाल ही में अचानक कांग्रेस के नेतृत्व वाली संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन की सरकार को इलहाम हुआ कि महँगाई वाकई बढ़ गयी है! दरअसल, इस इलहाम की फौरी वजह पंजाब और उत्तराखण्ड के चुनावों में कांग्रेस की हार थी। सोनिया गाँधी को स्वयं स्वीकार करना पड़ा कि हार का एक बड़ा कारण महँगाई है और आर्थिक विकास की दर तो क़ाबिले-तारीफ़ है लेकिन सरकार को इस बात पर ध्यान देना पड़ेगा कि महँगाई और मुद्रास्फीति भी काबू में रहे। राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान मनमोहन सिंह ने जल्दी ही महँगाई पर लगाम लगाने की बात की। उसके सप्ताह भर के भीतर ख़बर आयी कि मुद्रास्फीति में थोड़ी और बढ़ोत्तरी हो गयी है। यह साफ़ है कि महँगाई पर ये चिन्ताएँ वास्तविक हों (जिसकी उम्मीद कम ही है) या फिर नकली, महँगाई पर काबू पाना इस व्यवस्था के लिए मुश्किल है। पूँजीवादी विकास के साथ मुद्रास्फीति और महँगाई हमेशा नत्थी होती है। इन चिन्ताओं की असलियत भी संसद में प्रस्तुत वर्ष 2006-07 के आर्थिक सर्वेक्षण पर एक निगाह डालते ही साफ़ हो जाती है। मनमोहन-मोण्टेक-चिदम्बरम गिरोह के पास आम आदमी को देने के लिए झूठे आश्वासनों के अलावा कुछ नहीं है और उसका सारा ध्यान फिक्की और एसोचैम में बैठे अपने आक़ाओं की सेवा करने पर लगा हुआ है।

इस आर्थिक सर्वेक्षण में पिछले तीन वर्षों से विकास की दर लगातार 8 प्रतिशत होने और चालू वित्तीय वर्ष में इसके 9 प्रतिशत हो जाने पर खूब जश्न मनाया गया है। लेकिन साथ ही यह रिपोर्ट मुद्रास्फीति की दर 6.5 प्रतिशत से अधिक हो जाने पर चिन्ता भी प्रकट करती है। कृषि में वृद्धि दर सिर्फ़ 2.2 प्रतिशत होने पर भी काफ़ी रोना रोया गया है। रिपोर्ट सन्त भाव से कहती है कि आज "समावेशी विकास" की ज़रूरत है जिसके फल नीचे तक पहुँचें। वर्ष 2007-08 के केन्द्रीय बजट में चिदम्बरम साहब ने इन चिन्ताओं का कितना ध्यान रखा है यह देखना दिलचस्प होगा। लेकिन उससे पहले इस पूँजीवादी विकास दर की पोल-पट्टी खोलना ज़रूरी है जिस पर रिपोर्ट हर्षातिरेक में है।

कुछ बुर्जुआ आर्थिक विश्लेषक स्वयं यह कह रहे हैं कि अर्थव्यवस्था की मौजूदा उच्च विकास दर के पीछे काफ़ी हद तक आँकड़ों का हेराफेरी भी है। कहना पड़ेगा कि इन दावों में काफ़ी हद तक सच्चाई है। वर्ष 1999-2000 में राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी और आधार वर्ष में परिवर्तन किया गया था। आधार वर्ष को पैमाना मानकर ही विकास को मापा जाता है। क्या इसे महज संयोग माना जाये कि जिन क्षेत्रों में सांख्यिकीय संशोधन किये गये थे उन्हीं क्षेत्रों में हाल के वर्षों में बचत और निवेश में सबसे अधिक बढ़ोत्तरी दर्ज की गयी है? बहरहाल, इन सांख्यिकीय चमत्कारों की बात छोड़ दें तो भी अहम सवाल यह है कि ऊँची वृद्धि दर और "समावेशी विकास" एक-दूसरे के लिए इतने पराये क्यों बने हुए हैं? यदि सरकार यह मानती है कि यह विकास समावेशी, यानी सबको समेटने वाला नहीं है, तो इसका अर्थ है कि वह मान रही है कि यह विकास चन्द लोगों के लिए है।

आर्थिक समीक्षा में सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर के साथ ही विकास के जो अन्य आँकड़े प्रस्तुत किये गये हैं उनमें प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि दर 7.4 प्रतिशत, बचत दर 32.4 प्रतिशत और निवेश दर 33.8 प्रतिशत दर्शायी गयी है। भारत का विदेशी मुद्रा भण्डार 180 अरब डालर तक पहुँच गया है और वर्ष 2005-06 में पहले आठ महीनों में भारत ने निर्यात की वृद्धि दर के मामले में चीन को पछाड़ दिया है। उपर्युक्त अवधि में चीन की निर्यात वृद्धि दर केवल 25.8 रही जबकि भारत ने 40.4 प्रतिशत की निर्यात वृद्धि दर्ज की। पिछले दिनों टाटा और बिड़ला ने विदेशी कम्पनियों का अधिग्रहण भी किया। लेकिन बुर्जुआ समष्टि अर्थशास्त्र (मैक्रो इकोनॉमिक्स) के ये विकास सम्बन्धी आँकड़ें विकास की वास्तविक तस्वीर सामने नहीं लाते। असली तस्वीर तब सामने आती है जब हम सच्चाई के दूसरे पहलू पर नज़र डालते हैं।

खुद आर्थिक समीक्षा में स्वीकार किया गया है कि रोजगार का सृजन अत्यन्त धीमी रफ्तार से हो रहा है। वर्ष 2001-2005 के दौरान रोजगार वृद्धि दर केवल 2.5 प्रतिशत रही है जबकि इससे पूर्व के पाँच वर्षों (1995-2000) के दौरान यह केवल 1.6 प्रतिशत रही है। अगर केवल संगठित क्षेत्र में रोजगार वृद्धि दर की बात करें तो पिछले दस वर्षों (1994-2004) में यह ऋणात्मक (- 0.38 प्रतिशत) रही है। इसके पूर्व के दस वर्षों (1983-94) में भी वृद्धि दर केवल 1.2 प्रतिशत ही रही है। जाहिर है कि संगठित क्षेत्र में रोजगार की यह कमी निजीकरण की नीतियों के कारण ही पैदा हुई है। लेकिन आर्थिक सर्वेक्षण जब रोजगार वृद्धि के उपायों की बात करता है तो अपनी आशायें निजी क्षेत्र पर ही टिकाता है जबकि उपर्युक्त अवधि में निजी क्षेत्र में भी रोजगार वृद्धि दर नगण्य ही रही है। निम्न तालिका से यह बात स्पष्ट है:

तालिका-एक

संगठित क्षेत्र में रोजगार वृद्धि दर (प्रतिशत में)

वर्ष	संगठित क्षेत्र (निजी-सार्वजनिक)	निजी क्षेत्र
1983-94	1.2	0.44
1994-2004	-0.38	0.61

स्रोत : भारत सरकार का आर्थिक सर्वेक्षण 2006-2007

एक तरफ़ तो रिपोर्ट में संगठित क्षेत्र में रोज़गार सृजन की दयनीय स्थिति पर चिन्ता जतायी गयी है वहीं ऐसी कोई सिफ़ारिश भी नहीं की गयी है कि निजीकरण पर रफ़्तार पर रोक लगायी जाय। उल्टे, रिपोर्ट में निजीकरण की प्रक्रिया और सार्वजनिक क्षेत्र में कर्मचारियों की छँटनी को स्वागतयोग्य बताया गया है और कहा गया है कि इस क्षेत्र का उद्देश्य रोज़गार देना नहीं है :

"सार्वजनिक क्षेत्र में कर्मियों की संख्या को युक्तिसंगत बनाना, जिसका प्राथमिक उद्देश्य शिक्षा, स्वास्थ्य, सड़क और सिंचाई जैसी आवश्यक सेवाओं को उपलब्ध कराना है न कि प्रत्यक्ष रोजगार देना, स्वागतयोग्य है और इसे जारी रहना चाहिए... ।"

ऊँची वृद्धि दर का दूसरा पहलू ही यही है—रोज़गार विहीन विकास। 'स्टाफिंग' लीज नामक एक निजी संस्था के सर्वेक्षण के अनुसार वर्ष 2020 तक भारत में बेरोजगारों की संख्या 50 करोड़ के ऊपर पहुँच जायेगी और बेरोजगारी दर 12 प्रतिशत।

यह ऊँची वृद्धि दर ग़रीब जनता के लिए कोई मायने नहीं रखती। अगर राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के ही कुछ आँकड़ों पर नज़र डालें तो यह बात साफ़ हो जाती है। नमूना सर्वेक्षण के अनुसार वर्ष 1996 में गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने वालों की संख्या 26 करोड़ थी जो 2005 में बढ़कर 22 करोड़ हो चुकी है। इसी प्रकार देश में अभी भी 18 करोड़ लोग झुग्गियों में रहते हैं और इतने ही लोग फुटपाथों पर सोते हैं। इससे साफ़ जाहिर है कि देश में भवन निर्माण उद्योग में जो तेज़ी आयी है उसका लाभ केवल खुशहाल मध्य वर्ग तक सिमट कर रह गया है। पिछले दिनों एक बीमा कम्पनी ने अपने एक सर्वेक्षण में इस विकास की पोल जाने-अनजाने खोल दी थी। इसमें कहा गया है कि देश की 65 प्रतिशत आबादी स्वास्थ्य, चिकित्सा और अस्पतालों का खर्च उठाने की स्थिति में नहीं हैं। जाहिर है कि राष्ट्रीय आय में जो बढ़ोत्तरी हो रही है वह मुट्ठी भर लोगों के हाथों में संचित हो रही है। एक तरफ वंचितों की यह तस्वीर है तो दूसरी ओर समृद्धि की मीनारें ऊँची होती जा रही हैं। देश में प्रति वर्ष 20 प्रतिशत की दर से करोड़पतियों की संख्या में वृद्धि हो रही है।

सारे परजीवी, मुफ़्तखोरों और मुनाफ़ाखोरों के लिए तो यह वृद्धि और विकास वाकई मलाई-कुल्फी और रबड़ी-फालूदा लेकर आयी है—वह भी लगभग मुफ़्त में। नीचे जो आँकड़े दिये जा रहे हैं उसे देखकर समझा जा सकता है कि इस देश का पूँजीपति वर्ग मोण्टेक-चिदम्बरम की सेवाओं से इतना प्रसन्न क्यों है। बड़ी देशी औद्योगिक कम्पनियाँ और मुट्ठीभर ऊपरी जमातें सामाजिक सम्पदा का निजी संचय किस तरह कर रही हैं उसे समझने के लिए कुछ आँकड़े ही पर्याप्त हैं। देशी कम्पनियाँ राष्ट्रीय आय का 4.1 प्रतिशत शेष समाज की बचत से प्राप्त करती हैं जबकि सरकार करों द्वारा राष्ट्रीय आय का 11 प्रतिशत प्राप्त करती है। कम्पनियों द्वारा जनता से की जाने वाली इस "वसूली" (राष्ट्रीय आय का 4.1 प्रतिशत) में बढ़ती कीमतों के रूप में उद्योगपतियों द्वारा उपभोक्ताओं से की गयी ज़बरिया वसूली को भी जोड़ दें तो व्यक्तियों-परिवारों की आय, बचत और सम्पत्ति (भूमि अधिग्रहण के रूप में ज़बरन तथा कम कीमतों पर किया गया हस्तान्तरण) से लिया गया हिस्सा सरकारी कर वसूली के आसपास आराम से पहुँच जायेगा। इसके अतिरिक्त इस सरकार की पक्षधरता भी इस बात से जाहिर हो जाती है कि कम्पनियों और सम्पत्तिवान तबकों के पास लगभग 1.16 लाख करोड़ रुपये का सरकारी कर बकाया है। इस मुट्ठी भर तबके को हर साल करों में भारी छूट मिलती है (पिछले साल यह राशि 58 हज़ार करोड़ रुपये आँकी गयी थी)। इस तबके ने बैंकों के लगभग 60 हजार करोड़ रुपये हजम कर रखे हैं और डकार भी नहीं ले रहे हैं। इसके अलावा मुनाफे, डिविडेण्ड, ब्याज आदि के रूप में होने वाली प्रत्यक्ष आमदनी का कहना ही क्या! क्या अब भी कोई शुबहा है कि 9.2 प्रतिशत की विकास दर से किसकी तोंद फूलती जा रही है और किसके चेहरे पर लाली छा रही है? आय और सम्पत्ति के केन्द्रीकरण का आलम यह है कि शेयर बाज़ार की प्रतिभूतियों का मोल राष्ट्रीय आय के 90 प्रतिशत के बराबर पहुँच चुका है। यह भारतीय पूँजीवाद के अधिक से अधिक अनुत्पादक, सट्टेबाज़ और जुआरी होने का ही लक्षण है।

राष्ट्रीय आय के वितरण की इस भीषण असमानता को देखते हुए एक साधारण पाठक भी यह समझ सकता है कि पूँजीवादी सरकारों को पूँजीपतियों की मैनेजमेण्ट कमेटी क्यों कहा जाता है। वित्त मंत्री पी. चिदम्बरम ने अपने बजट भाषण में समावेशी विकास समता और सामाजिक न्याय की दुहाई तो खूब दी है लेकिन एक भी क़दम ऐसा नहीं उठाया है जिससे उनकी इन घोषित प्रतिबद्धताओं की झलक भी मिले। उन्होंने वर्ष 2007-2008 के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, ग्रामीण विकास और राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना जैसी ध्वजपोत कही जाने वाली तथाकथित आठ कल्याणकारी योजनाओं के लिए जो बजटीय आवण्टन किया है उसकी मामूली चीरफाड़ से ही असलियत सामने आ जाती है।

वित्त मंत्री ने शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में इस बार बजटीय आवण्टन में क्रमशः 34.2 प्रतिशत और 21.9 प्रतिशत बढ़ोत्तरी का खूब हल्ला मचाया है। जबकि असलियत यह है कि इसके बावजूद भी यह आवण्टन सकल घरेलू उत्पाद के तीन प्रतिशत से भी कम है। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि ज़मीनी स्तर पर इन आवण्टनों का लाभ किस हद तक पहुँचेगा यह अब तक के अनुभवों के आधार पर आसानी से समझा जा सकता है। यहाँ यह भी दिलचस्प है कि **शिक्षा मद के आवण्टन की राशि जुटाने के लिए जो 3 प्रतिशत उपकर लगाया गया है।** उसका बोझ गरीब और अमीर सबको बराबर-बराबर उठाना है। शायद वित्तमंत्री महोदय के लिए 'समता के विचार' का अर्थ यह है कि गरीब हो या अमीर सबकी हजामत समान भाव से की जाये!

सरकार ने ध्वजपोत कहे जाने वाले आठ कल्याणकारी कार्यक्रमों के बजटीय आवण्टन को बढ़ा हुआ दिखाकर आँखों में धूल झोंकने की कोशिश की है। इन सभी कार्यक्रमों के आवण्टन में औसत बढ़ोत्तरी सात प्रतिशत हुई है लेकिन अगर औसतन लगभग सात प्रतिशत मुद्रास्फीति पर गौर करें तो यह बढ़ोत्तरी लगभग शून्य हो जाती है। खाद्यान्न सब्सिडी के आवण्टन में बढ़ोत्तरी मात्र 6.2 प्रतिशत है जो वस्तुतः कटौती के समान है। इसी तरह का घपला हमें राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी के आवण्टन में दिखायी देता है। पिछले बजट में इस योजना को 200 जिलों में शुरू करने की घोषणा करते हुए 11,300 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया था जो आवश्यकता से काफी कम था। इस बार 130 और नये जिलों तक इस योजना का दायरा बढ़ाया गया है लेकिन पिछले साल की आवण्टित रकम में केवल 700 करोड़ रुपये की वृद्धि की गयी है। यानी जिलों की संख्या में 40 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी जबकि धन आवण्टन में बढ़ोत्तरी की गयी है मात्र 6 प्रतिशत।

जब पूँजीवादी व्यवस्था के पैरोकार बढ़ती महँगाई और मुद्रास्फीति पर चिन्ता प्रकट करते हैं तो दरअसल उनकी चिन्ता इसके सामाजिक और राजनीतिक परिणामों को लेकर होती है। वैसे तो चीज़ों की कीमतें बढ़ाकर तात्कालिक मुनाफ़ा सुरक्षित करना और मुद्रास्फीति बढ़ाकर वास्तविक वेतन को घटा देना तो एक प्रचलित पूँजीवादी तरीका होता है। कई बार पूँजीवादी सरकारें ऐसा करती हैं कि वेतन बढ़ाती हैं लेकिन उससे तेज़ रफ़्तार से मुद्रास्फीति बढ़ाकर वास्तविक वेतन घटा देती हैं। लेकिन लम्बे समय तक मुद्रास्फीति का बने रहना या इसकी वृद्धि दर का दहाई के अंकों को पार कर जाना उलटकर मुनाफे को नुकसान भी पहुँचाने लगता है। क्योंकि इससे खरीदारों की क्रय शक्ति घट जाती है और मालों की माँग कम हो जाती है जिसका सीधा असर उत्पादक गतिविधियों पर पड़ता है और इससे पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर कम हो जाती है। इसलिए सरकारें एक हद तक मुद्रास्फीति नियंत्रित करती भी नज़र आती हैं। यानी, बढ़ती महंगाई सं 'आम आदमी' को होने वाली परेशानियों की वजह से नहीं वरन पूँजीवादी विकास की ज़रूरतों से सरकारें मुद्रास्फीति कम करने की कवायदें करती नज़र आती हैं। चिदम्बरम ने नये बजट में भी मुद्रास्फीति कम करने के कुछ उपाय किये हैं। लेकिन एक स्तर तक मुद्रस्फीति का बने रहना पूँजीवादी विकास के लिए शुभ और पूँजीपतियों के लिए खुशी का सबब होता है। इसी सच्चाई को चिदम्बरम ने अपने एक बयान में स्वीकार किया था। उन्होंने कहा था कि विकास की मौजूदा दर को बनाये रखने के लिए एक सीमा तक मुद्रास्फीति का बने रहना जरूरी है और लोगों को इसके साथ जीने की आदत डाल लेनी चाहिए। हालांकि यह बयान उन्होंने तब दिया था जब पंजाब और उत्तराखंड के चुनाव नतीज़े आये नहीं थे! अब मुद्रास्फीति को लेकर प्रकट की जाने वाली "चिन्ताएँ" चुनावी नतीजों की मार से निकल रही हैं। आख़िर पूँजीपतियों की सेवा करने के लिए भी एक हद तक जनता के प्रति जवाबदेही दिखाना और उसका विश्वास अर्जित करना जरूरी होता है। चिदम्बरम ने अपने बजट भाषण में लोगों को यह विश्वास दिलाने की कोशिश की कि उनके द्वारा उठाये गये क़दमों से मुद्रास्फीति पाँच से साढ़े पाँच फीसदी बढ़ोत्तरी के अपने दशकों से प्रचलित ढर्रे पर आ जायेगी मानो यह दर कोई प्राकृतिक नियम हो। दरअसल, दशकों से बनी हुई 5.5 प्रतिशत की मुद्रास्फीति से पूँजीपतियों-व्यापारियों-सटोरियों का मुट्ठी भर तबका राष्ट्रीय आय का अधिक से अधिक हिस्सा हड़पता चला आ रहा है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में तेज़ी के साथ शेयर बाज़ार अधिक से अधिक चंचल होता जा रहा है। शेयर बाज़ार में आने वाला उछाल या गिरावट अर्थव्यवस्था की सेहत के बारे में कुछ भी नहीं बताता। वस्तुतः बुनियादी अर्थव्यवस्था के विकास से इसका कोई सीधा रिश्ता नहीं रह गया है। प्राथमिक स्तर का शेयर कारोबार, जो एक हद तक अर्थव्यवस्था की वास्तविक हलचलों का पैमाना माना जा सकता है, आज समूचे शेयर कारोबार का एक बेहद छोटा हिस्सा रह गया है। प्राथमिक शेयरों के ऊपर कई स्तरों की सट्टेबाजी का बाजार इतना विस्तृत हो चुका है कि अब शेयरबाजार वस्तुतः जुआघर बन चुके हैं जिनमें अरबों-खरबों की मुद्रा-पूँजी हवा के गुब्बारों की तरह फूलती जाती है। दूसरे शब्दों में, शेयर बाजार आज केवल ज्वाइण्ट स्टॉक कम्पनियों द्वारा पूँजी जुटाने का माध्यम ही नहीं बल्कि यह मुद्रा-पूँजी के निवेश का एक स्वतंत्र स्वायत्त क्षेत्र बन चुका है। यह प्राथमिक शेयरों के द्वितीयक, तृतीयक, चतुर्थक स्तरों पर सट्टाबाजार के जरिये निरन्तर क्रियाशील रहता है।

नयी आर्थिक नीतियों के लागू होने के साथ ही शेयर बाज़ार में निवेश को आमन्त्रित करने के लिए सरकार ने तरह-तरह की छूटें दीं। शेयर बाजार के बड़े खिलाड़ी उद्योगों और बैंकों से साँठ-गाँठ करके अनेकानेक प्रकार से शेयरों के भाव चढ़ाते-गिराते रहते हैं और रातों-रात अरबों का वारा-न्यारा करते हैं। शेयर बाजार में निवेश का पैमाना या संवेदी सूचकांक का चढ़ना-गिरना अर्थव्यवस्था की वास्तविक उत्पादक गतिविधियों से वस्तुतः इतना कम संचालित होता है कि इसका ठीक-ठीक पता लगाना मुश्किल होता है कि कब किसी अनिष्टकारी आर्थिक सूचना या राजनीतिक घटनाक्रम या यहाँ तक कि किसी अफवाह मात्र से शेयर बाजार औंधे मुँह गिर पड़े। शेयर बाजार में निवेशित हो रही यह पूँजी इतनी नाजुक मिजाज है कि कब मात्र मौसम की रंगत बदलने से होने वाले सम्भावित नुकसान की आशंका में बिकवाली शुरू हो जाये और विदेशी संस्थागत निवेशक शेयर बाजार से पूँजी निकालकर रफू-चक्कर हो जायें। कुछ सालों पहले पूर्वी एशियाई देशों में जो शेयर विध्वंस हुआ था वह इसी उड़नछू या आवारा पूँजी की करतूत थी।

यह उड़नछू पूँजी आज भारत के शेयर बाजार में भारी परिमाण में लगी हुई है जो उपनी नाजुकमिजाजी के कारण सेंसेक्स को उठाती-गिराती रहती है। सेंसेक्स में पिछले लम्बे अर्से से जो भारी उछाल दिखायी देती रही है वह विदेशी संस्थागत निवेशकों के कारण ही है। भारत के शेयर बाजार में गिरावट का कारण मुख्य रूप से विदेशी उड़नछू पूँजी की करतूत ही थी। वैसे शेयर बाजार के कुछ बुर्जुआ जानकारों का यह मानना है कि यह गिरावट चीन द्वारा अपनी अर्थव्यवस्था की 'ओवरहीटिंग' रोकने के लिए उठाये गये कुछ कदमों की वजह से है। कुछ का यह भी मानना है कि इसका एक और कारण डालर के मुकाबले येन की कीमत बढ़ना भी है। हो सकता है इस तात्कालिक गिरावट के पीछे यही कारण हों लेकिन बुनियादी बात है उड़नछू पूँजी की करामात। यह अनुत्पादक पूँजीनिवेश आज के पूँजीवाद की एक लाक्षणिक विशेषता बन चुका है जो विश्व पूँजीवाद की अधिकाधिक परजीवी और मरणशील प्रकृति को ही परिलक्षित कर रहा है।

वित्तमंत्री पी. चिदम्बरम ने अपने बजट भाषण में लफ्फाजी की है कि उनका मुख्य जोर 'समावेशी विकास, समता और सामाजिक न्याय' पर केन्द्रित है। यह सौ फीसदी लफ्फाजी इसलिए है क्योंकि पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था के उन्मूलन के बगैर कोई भी चीज़ विकास के इस पैटर्न को बदल नहीं सकती। दरिद्रता के सागर में समृद्धि की मीनारें खड़ी करना तो पूँजीवादी विकास की फ़ितरत है। लेकिन पूँजीपतियों का यह मक्कार मुनीम मुस्कुराते हुए जनता को बेवकूफ बनाने की कवायदों में जुटा हुआ है कि पूँजीवादी विकास के तहत भी समावेशी विकास हो सकता है।

लेकिन ऐसी मक्कारियाँ बहुत दिनों तक नहीं चल सकतीं। पूँजीवाद के सभी 'शॉक एब्ज़ॉर्बर्स' अब संतृप्त हो रहे हैं। जनता अपने जीवन से यह समझती जा रही है कि किसी भी चुनावी पार्टी की सरकार हो, उनकी आर्थिक नीतियों के केन्द्र में मनुष्य नहीं मुनाफ़ा है। बजट में मुद्रास्फीति रोकने, महँगाई रोकने आदि पर काफ़ी दिव्य वचन उचारे गये हैं। लेकिन विकास की दिशा यही रहते हुए और पूँजीवाद के कायम रहते यह सम्भव नहीं है।